भारतीय अर्थव्यवस्था के चुनिंदा पहलू *

या. वे. रेड्डी

आपके प्रतिष्ठित बैंक में आने के लिए गवर्नर फुकुई द्वारा दिये गये आमंत्रण के लिए मैं सम्मानित हुआ हूँ। भारतीय रिज़र्व बैंक (आर बी आई) में, हम, इस सम्मान के लिए आपका भारी आभार मानते हैं। गवर्नर, तोशिहिको फुकुई का उनके गहन ज्ञान, उनकी, बुद्धिमत्ता तथा जापान की अर्थव्यवस्था तथा बैंक ऑफ जापान की नीतियों के बारे में उनकी अत्यधिक पारदर्शी व्याख्या के लिए विभिन्न केन्द्रीय बैंकों के मंच पर भारी आदर किया जाता है। हम भारतीय रिज़र्व बैंक में उनके आगमन का निमंत्रण स्वीकार करने तथा अपने व्याख्यान द्वारा हमें लाभान्वित करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सर्व प्रथम, मुझे स्मरण आता है और मैं उसे दर्ज करना चाहता हूँ कि जुलाई 1991 में, बैंक ऑफ जापान ने स्वर्ण की जमानत पर भारत को 195 मिलियन अमेरिकी डालर की ऋण सुविधा उपलब्ध करायी थी जिसका सितम्बर से नवम्बर 1991 के दौरान हमने पूर्णतः निपटान कर दिया था। समय पर दी गयी इस सहायता ने भारत को अपनी बाह्य देयताओं को बिना फेल हुए समय पर चुकाने की त्रुटिहीन प्रतिष्ठा को बनाये रखने तथा स्थिरीकरण और सुधारों के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में समर्थ बनाया। वस्तुतः वह अवधि हमारे आर्थिक इतिहास का विशिष्ट काल था और सुधार-पूर्व तथा सुधारोत्तर अवधि को अलग-अलग करता है। यह सुधारोत्तर अवधि हमें उच्च वृद्धि और स्थिरता के युग की ओर लेकर आयी है।

अतीत में भी ऐसे अनेक अवसर रहे हैं, जब बैंक ऑफ जापान तथा भारतीय रिज़र्व बैंक ने परस्पर हितकारी और सार्थक आदान-प्रदान किया है। उदाहरण के लिए जून 1968 में रिज़र्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर ने बैंक ऑफ जापान से भारत में निर्यात ऋण की समस्या का अध्ययन करने तथा प्रणाली में सुधार के लिए सुझाव

* डॉ. या. वे. रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 27 मई 2007 को बैंक ऑफ जापान, टोकियो में दिया गया भाषण।

देने के लिए किसी विशेषज्ञ को भेजने का अनुरोध किया था। जापानी परामर्शदाता बैंक ऑफ जापान के मि. योशियका टोडा ने हमारी प्रणाली में विद्यमान अनेक खामियों और कमियों की पहचान की और अनेक सिफारिशें की थीं। एक सच्ची जापानी परम्परा के अनुसार मि. टोडा का अन्तिम निष्कर्ष यह था कि ''भारत की निर्यात ऋण प्रणाली विश्व में केन्द्रीय बैंकों द्वारा बनायी गयी सर्वोत्तम प्रणाली है।''

भारतीय रिज़र्व बैंक का परिचय

भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत 1 अप्रैल 1935 को निजी शेयरधारकों के बैंक के रूप में हुई थी, परन्तु 1949 में इसके राष्ट्रीकरण के बाद से यह पूर्णतः भारत सरकार द्वारा स्वाधिकृत है। रिज़र्व बैंक की उद्देश्यिका में उसके बुनियादी कार्यों को *'भारत में मौद्रिक स्थिरता प्राप्त करने तथा आम तौर पर देश की मुद्रा और ऋण प्रणाली को इसके हित में परिचालित करने के लिए बैंक नोटों के निर्गम को विनियमित करना तथा प्रारक्षित निधियों को रखना'* के रूप में वर्णित किया है। इस प्रकार अनेक देशों में विद्यमान प्रवृत्ति से भिन्न इसके लिए मूल्य-स्थिरता या औपचारिक रूप से मुद्रास्फीति को लक्ष्य-बद्ध करने का कोई स्पष्ट आदेश नहीं है, परन्तु यह आदेश अमरीका के फेडरल रिज़र्व के आदेश जैसा लगता है। भारत में मौद्रिक नीति के ये दोनों उद्देश्य जो वर्षों से विकसित हुए हैं, वे हैं - मूल्य स्थिरता को बनाये रखना तथा वृद्धि की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए पर्याप्त ऋण का प्रवाह सुनिश्चित करना। इन दोनों उद्देश्यों के बीच तुलनात्मक बल विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है, और उसका स्पष्ट उल्लेख नीति सम्बंधी वक्तव्यों में किया जाता है। इस आदेश में व्यापक आर्थिक स्थिति तथा वित्तीय स्थिरता का प्रश्न भी जुड़ा है। रिज़र्व बैंक को विदेशी मुद्राभण्डार (जिसमें स्वर्ण की धारिता भी शामिल है) की व्यवस्था का दायित्व भी दिया गया है जो इसके तुलन पत्र में दर्शाया जाता है।

यद्यपि रिज़र्व बैंक अनिवार्यतः एक मौद्रिक प्राधिकारी है, फिर भी इसकी स्थापना संबंधी कानून इसे यह आदेश देती है कि यह भारत सरकार के लोक ऋण का प्रबंधक तथा सरकार का बैंकर भी बने।

बैंकों के विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य रिज़र्व बैंक को 1949 में बने एक अलग अधिनियम द्वारा प्रदान किया गया, जबकि ग़ैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के विनियमन का कार्य भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में एक संशोधन करके इसे दिया गया है। मुद्रा बाजारों, सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार तथा स्वर्ण के विनियमन की शक्तियां भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम से निकाली गयी हैं और विनियमन का यह कार्य प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम के अन्तर्गत जारी सरकारी अधिसूचनाओं द्वारा स्पष्टतः सौंपा गया है।

बाह्य क्षेत्र के चालू और पूंजी खाते के लेनदेनों के विनियमन का कार्य 1973 के एक पूर्ववर्ती विधान की जगह एक दूसरा विधान 1999 में लाकर रिज़र्व बैंक को सौंपा गया।

करेंसी (मुद्रा) जारी करने के अतिरिक्त, रिज़र्व बैंक को सिक्कों के वितरण का कार्य भी सौंपा गया है।

रिज़र्व बैंक को अनेक सांविधिक निकायों जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, कृषि, आवास तथा जमा बीमा आदि को संचालित करने वाली विकास वित्त संस्थाओं में भी कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं।

रिज़र्व बैंक के कार्यों का संचालन केन्द्रीय निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है, जिसमें गवर्नर तथा चार उप-गवर्नरों के अलावा, सरकार द्वारा नामित चौदह गैर-

कार्यपालक, स्वतंत्र निदेशक हैं। इनके अतिरिक्त, बोर्ड में एक सरकारी पदाधिकारी भी नामित किया जाता है, जो बोर्ड की बैठकों में भाग लेता है, परन्तु उसमें मतदान नहीं कर सकता।

रिज़र्व बैंक के 22 क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो अधिकांशतः राज्यों की राजधानियों में स्थित हैं। रिज़र्व बैंक राज्यों (अर्थात् भारतीय संघ के प्रदेशों) की सरकारों का ऋण प्रबंधक तथा बैंकर भी है।

रिज़र्व बैंक विशेषकर वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के संबध में केन्द्रीय और राज्य सरकारों को सलाह भी देता है।

संक्षेप में, मौद्रिक प्रबन्धन के अलावा, रिज़र्व बैंक को अनेक कार्य सौंपे गये हैं। इनमें से प्रत्येक कार्य को करने में विधान तथा कार्यमूलक विषय-वस्तु यह अपेक्षा करती है कि रिज़र्व बैंक अलग-अलग मात्रा में स्वायत्तता एवं सरकार के साथ समन्वय का प्रयोग करे। सरकार के साथ सम्बंधों को संचालित करने वाली तीन परिव्यापक विशेषताएं हैं - परिचालनों में स्वायत्तता; नीतियों में समरसता, तथा संरचनागत रूपान्तरण में समन्वय।

भारतीय अर्थव्यवस्था की झलकियां

विश्व के भू-भाग के 2.3 प्रतिशत भू-क्षेत्र वाला (सातवां सबसे बड़ा देश) भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है जिसकी जनसंख्या 102.9 करोड़ है और जो विश्व में सबसे बड़ी युवा शक्ति से सम्पन्न देशों में से एक है। 15-64 वर्ष की कार्य-उम्र समूह में इसकी जनसंख्या का अनुपात लगभग 62.9 प्रतिशत है और इसके 2026 तक 70 प्रतिशत के आसपास तक बढ़ जाने की आशा है। ''जनसंख्यागत लाभांश'' इस सहस्राब्दि के अगले कुछ दशकों तक बढ़ने की आशा है। यह भाषाओं, धर्मों, विचारधाराओं तथा रीति-रिवाजों (परम्पराओं) की दृष्टि से अनेकत्व का अद्वितीय उदाहरण है जो 28 राज्यों तथा सात केन्द्रीय रूप से प्रशासित संघीय क्षेत्रों तक फैला है जिसमें से प्रत्येक की अपनी अलग पहचान है, और अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज (मूल्य) हैं। जहाँ भारत का संविधान 22 भाषाओं को राजकीय भाषाओं के रूप में मान्यता देता है, वहीं भारत में मातृभाषाओं की संख्या 1,652 है। भारत में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन, मानवीय संसाधन तथा अलग-अलग प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्र हैं जो संस्थागत संरचना में झलकते हैं। इसमें अद्वितीय रूप से नमनीय संघीय व्यवस्था है, यह एक ऐसा लोकतन्त्र है जिसमें सभी को समान रूप से वयस्क मताधिकार है तथा जहाँ सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों का सह- अस्तित्व है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक हाल ही की, परन्तु सकारात्मक विशेषता है उसकी उच्च वृद्धि दर, जो 1980 के दशक से देखी गयी है। वास्तविक सकल देशी उत्पाद, जो 1980 और 1990 के बाद के दशकों में औसतन 5.8 प्रतिशत थी, वह 2003-07 की अवधि के दौरान बढ़कर 8.6 प्रतिशत तक पहुंच गयी। 2006-07 में (हम अपना वित्त वर्ष अप्रैल से मार्च के रूप में मनाते हैं) वास्तविक सकल देशी उत्पाद की वृद्धि दर 9.2 प्रतिशत थी जो उस वर्ष विश्व में सर्वोच्च वृद्धि दर थी। यदि चालू सकल देशी उत्पाद की लगभग 9 प्रतिशत की वृद्धि दर बनाये रखी जा सकी, तो कोई व्यक्ति अपना जीवन स्तर अपने जीवन में 5 गुना बढ़ा हुआ देख सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का एक दूसरा उल्लेखनीय पहलू है - संरचनागत रूपान्तरण जो अन्तवर्ती रूप से विद्यमान रहा है। 1947 में ब्रिटिश

शासन से आजाद होने के समय हमारी अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था थी, जिसमें परम्परागत औद्योगिक आधार था, जिसमें मुख्यतः बागान और कृषि पर आधारित उद्योग प्रधान थे। अतः कृषि का भाग सकल देशी उत्पाद का मात्र 18.5 प्रतिशत बनता है। हालांकि हमारी जनसंख्या के लगभग 60 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के एक रूप में कृषि पर निर्भर बने हुए हैं। मुख्य फसलों के उत्पादन में आये गत्यावरोध तथा कृषि सम्बंधी गतिविधियों में तीव्र उतार-चढ़ाव को देखते हुए हम अपनी अपेक्षाओं की तुलना में कृषि-उत्पादन को गत कुछ वर्षों के दौरान असन्तोषजनक मानते हैं, फिर भी कुछ क्षेत्रों में उल्लेखनीय लाभ हुए हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में, उत्पादकता तथा दक्षता में वृद्धि की बढ़ती हुई भावना के लाभ हुए हैं। आयातों तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के प्रति मुक्त रूप से पैठ होने की स्थिति में भारतीय उद्योग उत्तरोत्तर रूप से वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी हो रहे हैं और आक्रमक रूप से गत्यात्मक प्रतिस्पर्धात्मक बेहतर स्थिति की शक्ति के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में पैठ प्राप्त करते जा रहे हैं। भारतीय उद्योग के पुनरुद्धार में नीतिगत परिवेश ने भी अपनी भूमिका निभायी है। भारांकित औसत आधार पर प्रशुल्क, एशियान स्तरों पर तुलनीय हैं, तथा कारोबार पर कर अन्तर्राष्ट्रीय रूप से तुलनीय हैं। 2006-07 में औद्योगिक वृद्धि 11.3 प्रतिशत थी और विनिर्मित उत्पादों के निर्यातों में (अप्रैल-जनवरी में) अमरीकी डालरों की दृष्टि से 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

वर्तमान में, भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार सेवा-क्षेत्र है, जो 2006-07 में सकल देशी उत्पाद का 61.9 प्रतिशत बैठता है और 2002-07 की अवधि के लिए औसत वास्तविक सकल देशी उत्पाद की वृद्धि का दो-तिहाई भाग बनता है। भारत के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) की गाथा से सभी भली-भांति परिचित हैं। वृद्धि की शक्तियां अब अन्य क्षेत्रों जैसे इंजीनियरिंग तथा परामर्शन, संचार, मनोरंजन, कारोगार, वित्त तथा सूचना सेवाओं तथा अनेक वैयक्तिक सेवाओं जैसे पर्यटन और हास्पिटलिटी (होटल आदि) क्षेत्रों में भी फैल रही हैं। वास्तव में, भारतीय विकास का अनुभव अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अद्वितीय माना गया है जो प्राथमिक अर्थव्यवस्था से सीधे तृतीयक गतिविधियों में बढ़ी है न कि वृद्धि के प्राथमिक स्तर से द्वितीयक और फिर तृतीयक स्तर से होते हुए परम्परागत पथ से।

भारतीय अर्थव्यवस्था वस्तुतः 1980 के दशक के प्रारंभ तक रही आबद्ध अर्थव्यवस्था से खुलती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुई है - जो तेजी से 1990 के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में हुए प्रमुख सुधारों की शुरूआत से वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समन्वित होती गयी। खुलेपन की परम्परागत माप की दृष्टि से सकल देशी उत्पाद के प्रति निर्यातों और आयातों (वस्तुओं और सेवाओं दोनों का) अनुपात 1991-92 के 21.1 प्रतिशत से निरन्तर तेजी से बढ़ता हुआ 2005-06 में 50 प्रतिशत से ऊपर पहुंच गया और 2006-07 में उसके और भी ऊपर बढ़ जाने की आशा है। हाल के वर्षों में निर्यात और आयात दोनों दीर्घावृद्धि की दृष्टि से बढ़ते रहे हैं। वणिक व्यापार घाटा फिलहाल सकल देशी उत्पाद का लगभग 7 प्रतिशत है, तथापि चालू खाता घाटा वर्तमान में सकल देशी उत्पाद के 1.5 प्रतिशत से नीचे है। इसका मुख्य कारण है सेवा क्षेत्र में ज्ञान और तुलनात्मक रूप से प्रतिस्पर्धी बेहतर स्थिति तथा विदेशों में कार्यरत भारतीयों द्वारा भेजे जा रहे विप्रेषणों का निरंतर सशक्त समर्थन, जो हमें प्राप्त है। ये कारक हमें भुगतान संतुलन में अन्तःवर्ती समर्थन प्रदान करते हैं, तथा चालू खाते के अंतर को वहनीय सीमाओं में बनाये रखने में सहायता करते हैं। इस अर्थ में भारतीय

अर्थव्यवस्था ने चालू वैश्विक असंतुलनों को बढ़ाने में कोई योगदान नहीं किया है।

1990 के बाद के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर जब हमने अर्थव्यवस्था के क्रमिक उदारीकरण के साथ-साथ व्यापक रूप से और गहनता के साथ संरचनागत सुधार करने शुरू किये थे, उस समय भारत भारी मात्रा में पूंजी का आगम प्राप्त करता रहा था, जो भारतीय अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन के अन्तःवर्ती बुनियादी आधारों में अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास को दर्शा रहे थे। निवल पूंजी आगमों का सकल देशी उत्पाद के प्रति अनुपात 1991-92 के 1.5 प्रतिशत से लगभग दुगना होकर 2005-06 में 2.9 प्रतिशत हो गया। हाल के वर्षों में पूंजी का आगम और भी बड़ा हो गया है जो 2006 में उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक निवल निजी पूंजी आगमों का 15 प्रतिशत बैठता है। भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा भारतीय कम्पनियों द्वारा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों से उधारों में तेजी से वृद्धि हुई है। भारतीय स्टॉक बाजारों में संविभागीय आगमों ने मई-जून 2006 और फरवरी 2007 में वैश्विक इक्विटी बाजारों में दो प्रमुख बिक्रियों की दृष्टि से तेज वृद्धि दर्शायी है। भुगतान संतुलन पूंजी खाते में एक प्रमुख उभरता हुआ तत्व है - भारत से बढ़ता हुआ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (अर्थात भारतीय कम्पनियों द्वारा विदेशों में निवेश)। चालू खाता घाटे के वित्त पोषण के लिए वित्तीय आवश्यकताओं के काफी कम होने के कारण, निवल पूंजी आगमों के बढ़ते हुए संविभाग के परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा भंडार में तेजी से वृद्धि हुई है जो मार्च 2003 के अंत के 76 बिलियन अमेरिकी डालरों की तुलना में मार्च 2007 के अंत में दुगने से भी अधिक बढ़कर लगभग 200 बिलियन अमेरिकी डालरों का हो गया है। विदेशी मुद्रा भंडार का यह स्तर जहाँ जापान के विदेशी मुद्रा भण्डार की स्थिति की तुलना में काफी कम है, वहीं हमारा विदेशी मुद्रा भण्डार हमारे पूरे साल के आयातों तथा पूरा बाह्य ऋण से भी ज्यादा के स्तर से बढ़ रहे हैं। 2002 से, भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष को ऋणदाता के रूप में उभरा है, और अपने बाह्य ऋण का समय से पूर्व भुगतान करने में लगा है।

जहाँ भारतीय रिज़र्व बैंक को अनेक उद्देश्य सौंपे गये हैं, तथा उसे कानूनन आदेशगत कोई लक्ष्य / साधनगत स्वायत्तता प्रदान नहीं दी गयी है, वहीं मौद्रिक नीति का संचालन, निरन्तर रूप से सतत वृद्धि, मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता के लक्ष्यों के आसपास विकसित हुआ है। इनमें से प्रत्येक को दिये गये भारांकों के बीच संतुलन बैठाते हुए तथा विकसित होते हुए व्यापक आर्थिक परिदृश्यों के आधार पर फलीभूत हुआ है। हाल की अवधि में वैश्विक तथा घरेलू गतिविधियों की पृष्ठभूमि में मूल्य-स्थिरता तथा मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को सुव्यवस्थित रूप से नियंत्रित करने को प्राथमिकता दी गयी है। यह जानकर प्रसन्नता होती है कि गत चार वर्षों में उच्च वृद्धि दर के साथ-साथ मुद्रास्फीति की दर संतुलित रही हैं। थोक मूल्य सूचकांक की दृष्टि से थोक मुद्रास्फीति की दर 1990-95 के दौरान के 11.0 प्रतिशत से घटकर 1995-2000 के दौरान 5.3 प्रतिशत और 2002-07 के दौरान 4.9 प्रतिशत रही है। मुद्रास्फीति के गिरने की इस प्रवृत्ति के साथ-साथ मुद्रास्फीति गत उद्वेगशीलता में भी भारी कमी आयी है। जो इस बात का संकेत है कि मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को सुव्यवस्थित रूप से नियंत्रित किया गया है, बावजूद इसके कि देशी और बाह्य दोनों क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के प्रतिकूल आघात भी इसे सहने पड़े।

इस बात के प्रमाण हैं कि वित्तीय क्षेत्र के व्यापक और गहन होने के साथ-साथ बेहतर रूप से विनियामक और पर्यवेक्षी निगरानी के चलते व्यष्टिगत संरचनागत

सुधारों को लागू करते रहने से एक ऊर्जस्वित, सुदृढ़, दक्ष और विशाखीकृत वित्तीय प्रणाली को विकसित करने में सहायता मिली जिसमें सुदृढ़ और सुव्यवस्थित रूप से कार्यरत वित्तीय बाजारों का भी विकास हुआ। प्रतिस्पर्धा, विनियामक उपाय, नीतिगत परिवेश, तथा अभिप्रेरणा के मिले-जुले प्रभावों ने वित्तीय क्षेत्र को बेहतर शक्ति, दक्षता और स्थिरता प्रदान की है। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की प्रभावोत्पादकता बैंकिंग क्षेत्र को आस्तियों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार के रूप में भी परिलक्षित हुई है। वर्तमान में, सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक 9 प्रतिशत की न्यूनतम पूंजी-पर्याप्तता सम्बंधी अपेक्षा का अनुपालन कर रहे हैं। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की निरन्तर बनी रही सकल गैर-निष्पादक आस्तियाँ 2002-03 के अग्रिमों के 8.80 प्रतिशत के स्तर से गिरकर 2005-06 में 3.30 प्रतिशत पर आ गयी हैं। कुल आस्तियों के अनुपात के रूप में परिचालनगत खर्चे 2002-03 के 2.24 प्रतिशत से गिरकर 2005-06 में 2.11 प्रतिशत रह गये हैं।

मौद्रिक नीति की गतिविधियां

मौद्रिक विस्तार को लक्ष्यबद्ध करने वाला ढांचा भारत में 1980 के बाद के दशक के मध्य से ही स्थापित था और 1997-98 तक तत्काल लक्ष्य के रूप में व्यापक मुद्रा ($एम_3$) को माना जाता रहा। व्यवहार में, मौद्रिक विस्तार के लक्ष्य को नमनीय रूप में प्रयोग में लाया जाता था जिसमें वास्तविक क्षेत्र में हुई गतिविधियों से प्रतिसूचना प्राप्त की जाती थी। औपचारिक रूप से भारतीय रिज़र्व बैंक ने 1998-99 में बहु संकेतक दृष्टिकोण को अपनाया। इस दृष्टिकोण के अनुसार, ब्याज दरें या विभिन्न बाजारों (मुद्रा, पूंजी, तथा सरकारी प्रतिभूति बाजारों) में प्रतिलाभ की दरों तथा प्रचलन में मुद्रा, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये गये ऋण, राजकोषीय स्थिति, व्यापार शेष, पूंजी प्रवाह, मुद्रास्फीति की दर, विनिमय दर, पुनर्वित्त की दरें, तथा विदेशी मुद्रा लेनदेनों को भी ध्यान में रखा जाता था जो उच्च बरम्बारता के साथ उपलब्ध होती थीं और उत्पाद में प्रवृत्तियों को दर्शाती थीं और उनके आधार पर मौद्रिक नीति की सम्भावनाओं को परखा जाता था। इस बहु संकेतक दृष्टिकोण ने मौद्रिक नीति परिचालन को सूचनाओं के व्यापक धरातल पर अधिक व्यापक आधार वाला बना दिया तथा मौद्रिक प्रबन्धन के संचालन में नमनीयता प्रदान की।

जहाँ तक भारत में मौद्रिक नीति के परिचालन प्रक्रिया का प्रश्न है, उसमें प्रत्यक्ष लिखतों (साधनों) पर निर्भरता को कम किया गया है और चालू मौद्रिक नीति के परिचालनों के लिए अप्रत्यक्ष साधन महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। तथापि जब भी परिस्थितियों की मांग होती है, प्रत्यक्ष साधनों का भी उपयोग किया जाता है। प्रणाली में चलनिधि का प्रबन्धन सरकारी प्रतिभूतियों की सीधी खरीद/बिक्री करके तथा चलनिधि समायोजन सुविधा (एल ए एफ) के अन्तर्गत दैनिक रूप में रिपो और रिवर्स रिपो परिचालनों के अन्तर्गत खुले बाजार के परिचालनों के माध्यम से किया जाता है।

चलनिधि प्रबन्धन को 2004 में और उन्नत किया गया जिसमें बाजार स्थिरीकरण योजना चलायी गयी जिसके अन्तर्गत रिज़र्व बैंक को भारी मात्रा में पूंजी के आगमों और अधिशेष चलनिधि की परिस्थितियों में चलनिधि को निष्प्रभावी करने वाले परिचालनों के एक भाग के रूप में रिज़र्व बैंक को सरकारी प्रतिभूतियां जारी करने की अनुमति दी गयी। हालांकि इनके निर्गम को बजटीय समर्थन प्राप्त नहीं है, फिर भी इनके ब्याज का भार राजकोष को वहन करना पड़ता है और जहां तक सरकारी प्रतिभूति बाजार का प्रश्न है, इन प्रतिभूतियों

का भी अन्य सरकारी प्रतिभूतियों के समान द्वितीयक बाजार में लेनदेन किया जाता है।

एक सशक्त भुगतान एवं निपटान प्रणाली तथा बाजारों के सहयोग से रिज़र्व बैंक मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा विनिमय बाजारों को विकसित करने, उन्हें व्यापक तथा गहन बनाने में सक्रिय रूप से लगा रहा है। मध्यावधि ढाँचा वित्तीय बाजारों को विकसित करने, वित्तीय बाजारों की आन्तरिक निष्ठा को सुरक्षित कर बनाये रखने और उसके द्वारा मौद्रिक नीति की भावनाओं के संप्रेषण में सुधार लाने का रहा है।

मौद्रिक बाजार की कुछ महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं - सर्व प्रथम केवल बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों की सहभागिता के साथ मांग / सूचना बाजार को एक पूर्णतः अन्तबैंक बाजार के रूप में रूपान्तरित करने की दृष्टि से, गैर-बैंक सहभागियों को मांग मुद्रा बाजार से चरणबद्ध रूप में पूर्णतः हटा दिया गया है। दूसरे, अनेक नयी वित्तीय लिखतें शुरू की गयी हैं। विशाखीकृत बाजारी परिस्थितियों के अन्तर्गत अल्पावधि चलनिधि को संशोधित करने की दृष्टि से मीयादी अवधि पर परम्परागत वित्तीय समर्थन के स्थान पर पूर्ण चलनिधि समायोजन सुविधा शुरू की गयी है। तीसरे, अनेक अन्य मुद्रा बाजार की लिखतों (जैसे, जमा प्रमाण पत्र (सीडी), वाणिज्यिक पत्र (सीपी) आदि) को गैर-बैंकिंग सहभागियों को मुक्त रूप से सुलभ कराने के प्रयास भी किये गये हैं। इन उपायों का उद्देश्य मुद्रा बाजार के परिचालनों की गहनता में सुधार लाने तथा परिचालनों में कार्यकुशलता (दक्षता) और पारदर्शिता लाने का रहा है। चौथे, नयी लिखतों को विकसित करने के एक भाग के रूप में, एक प्रमुख पहल सामूहिक रूप से उधार लेने और देने का दायित्व रहा है जिसे मुद्रा बाजार की लिखत के रूप में परिचालित किया गया।

सरकार के लिए ऋण प्रबंधक के रूप में, सरकारी प्रतिभूतियों के लिए एक गहन तथा तरल बाजार का विकास रिज़र्व बैंक के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप सरकारी प्रतिभूतियों की बेहतर लागत का पता लग जाता है तथा उसकी उधार लेने की लागत भी कम हो जाती है। मौद्रिक नीति के लिए एक प्रभावी सम्प्रेषण के लिए तथा हेज़ (सुरक्षा कवर) उत्पादों को शुरू करने, उनका मूल्य - निर्धारण करने को सुविधाजनक बनाने के लिए तथा अन्य ऋण लिखतों के लिए आधार - (बेंचमार्क) के रूप में कार्य करने के लिए भी यह बाजार महत्त्वपूर्ण है। सरकारी प्रतिभूति बाजार के विकास की दिशा में किये जानेवाले प्रयासों को निम्न तीन क्षेत्रों पर केन्द्रित किया गया है : संस्थागत उपाय, लिखतों के माध्यम से नवोन्मेष तथा बाजार के विकास के उपायों को समर्थ बनाया।

सरकारी प्रतिभूति बाजार में प्रमुख गतिविधियों में निम्नलिखित शामिल हैं : निपटान के जोखिम को कम करने के लिए सुपुर्दगी बनाम भुगतान प्रणाली की स्थापना; बाजार के मध्यस्थन को सुदृढ़ करने के लिए प्राथमिक व्यापारियों की प्रणाली शुरू करना; प्रथाओं में सुधार लाने के लिए बाजार संस्थाओं जैसे - भारतीय निश्चित आय मुद्रा बाजार तथा व्युत्पन्नी संघ (फिम्डा), तथा भारतीय प्राथमिक व्यापारी संघ (पीडीएआई) का निर्माण; बाजारों को व्यापक बनाने की दृष्टि से सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक और द्वितीयक दोनों बाजारों में निवेश करने के लिए विदेशी संस्थागत निवेशकों को अनुमति देना, वार्ता द्वारा तय लेनदेन प्रणाली (एन डी एस) को परिचालित करना तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार में पारदर्शिता और स्थिरता बढ़ाने की दृष्टि से तथा निवेशकों अपनी निवेश योजनाओं को बेहतर बनाने का अवसर प्रदान करने की दृष्टि से खज़ाना बिलों तथा दिनांकित प्रतिभूतियों के लिए एक संकेतात्मक नीलामी कैलेंडर की घोषणा करना।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने विदेशी मुद्रा बाजार के हाजिर और वायदा दोनों घटकों का विकास करने की दिशा में अनेक उपाय किये हैं। अपने विदेशी मुद्रा विनिमय संबंधी परिचालनों को चलाने तथा अपने जोखिमों का प्रबन्ध करने में बाजार सहभागियों को और बेहतर नमनीयता भी प्रदान की गयी है। यह कार्य प्रक्रियाओं में सरलीकरण लाकर तथा विदेशी मुद्रा-रुपया विकल्प (आप्शंस) जैसी अनेक नयी लिखतें उपलब्ध कराकर किया गया है। प्राधिकृत व्यापारियों को अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी मुद्रा बाजार में क्रॉस करेंसी आप्शंस, ब्याज-दर स्वैप (आईआरएस) तथा करेंसी-स्वैप, कैप्स तथा कालर्स तथा वायदा दर करारों (एफआरए) जैसी नयी लिखतों का प्रयोग करने की अनुमति दी गयी है। ट्रेडिंग प्लेटफार्म तथा निपटान प्रक्रिया-तंत्रों की दृष्टि से बाजार की बुनियादी संरचना में भी उल्लेखनीय सुधार किये गये हैं।

वित्तीय क्षेत्र का विकास

भारत में 1992 से शुरू किये गये बैंकिंग क्षेत्र के सुधार से बैंकों की कार्य प्रणाली में बाह्य अवरोधों को शिथिल करके संरचनागत परिवर्तन लाये गये हैं। प्रमुख नीतिगत उपायों में नकदी प्रारक्षित अनुपात और सांविधिक चलनिधि अनुपात जैसी सांविधिक अपेक्षाओं को चरणबद्ध रूप में घटाना तथा कुछ चुनिंदा घटकों को छोड़कर जमा और उधार की ब्याज दरों का अपविनियमन शामिल है। बैंकिंग संस्थाओं के स्वामित्व का विशाखीकरण एक दूसरी विशेषता है जिसने स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्धकरण के जरिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में शेयरधारिता में सरकारी स्वामित्व में कमी लाकर निजी स्वामित्व (शेयर धारिता) को समर्थ बनाया है। बैंक शेयरों की स्वस्थ (अच्छी) बाजार कीमत के कारण सरकार द्वारा बैंकों में पूंजी का नया निवेश सरकार के लिए लाभप्रद रहा है। निजी क्षेत्र के बैंकों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को अब कुछ निर्धारित मार्गदर्शी सिद्धांतों के अधीन 74 प्रतिशत तक की अनुमति दी गयी है।

सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र और विदेशी बैंकों के सह-अस्तित्व ने बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पैदा कर दी है जिससे उनकी दक्षता तथा ग्राहक सेवा में पर्याप्त सुधार हुआ है। निजी और विदेशी बैंकों का कुल बैंकिंग आस्तियों में अंश मार्च 2005 के अंत के 24.7 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2006 के अंत में 27.6 प्रतिशत हो गया जो सुधारों के प्रारम्भ के समय मात्र 10.0 प्रतिशत था।

पूंजी-पर्याप्तता, आय की पहचान, आस्ति वर्गीकरण तथा प्रावधानीकरण के लिए बैंकों के लिए अपनाये गये विवेक-सम्मत विनियामक मानदण्ड क्रमिक रूप से बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम मानदण्डों के अनुरूप हो गये हैं। बासेल - II का पूंजी-पर्याप्तता ढांचा चरणबद्ध रूप में लागू किया जा रहा है और रिज़र्व बैंक ने हाल ही में इस सम्बंध में अन्तिम मार्गदर्शी दिशा-निदेश जारी किये हैं। एक तीन पथीय दृष्टिकोण तीन प्रकार के बैंकों अर्थात वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए अपनाया गया है ताकि इनका अनुपालन सुचारु रूप से हो सके। इन मानदण्डों ने बैंकिंग क्षेत्र की वित्तीय स्थितियों को सुदृढ़ किया है जिसके प्रमाण हैं - गैर-निष्पादक ऋणों की कम होती हुई स्थिति तथा सुधरते हुए पूंजी-पर्याप्तता अनुपात जो इन मानदण्डों को क्रमिक रूप से कठोर बनाये जाने के बावजूद प्राप्त किये जा सके हैं। उदाहरण के लिए 31 मार्च 2007 को 25 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में से नौ ने कुल अग्रिमों के अनुपात की तुलना में शून्य ग़ैर निष्पादक आस्तियों की सूचना दी है। गैर-निष्पादक आस्तियों की वसूली को तेज करने और उसे सुविधा जनक बनाने के लिए कुछ वैधानिक और संस्थागत उपायों को लागू करके और विशेष ट्रिब्यूनलों के गठन तथा पुनर्संरचना सम्बंधी

प्रक्रिया-तंत्र के माध्यम ऐसा सम्भव हो पाया है। बैंकों के मालिकों, निदेशकों तथा वरिष्ठ प्रबंधकों के लिए ''उचित और सही'' का मानदण्ड लागू करके बैंकों में संचालन पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

भुगतान प्रणाली को सुरक्षित, निष्कंटक और दक्ष बनाने के लिए रिज़र्व बैंक ने संस्थागत, प्रक्रियागत और परिचालनगत अनेक कदम उठाये हैं। दक्षता को बढ़ाने तथा जोखिम को कम करने के लिए तत्काल सकल निपटान प्रणाली और अन्य इलैक्ट्रोनिक भुगतान प्रणालियों और प्रक्रिया-तंत्रों का प्रयोग करने को काफी बड़े स्तर पर बढ़ावा दिया गया है। रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए काफी बल दिया है।

रिज़र्व बैंक के अन्दर पर्यवेक्षी ढांचे को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से 1994 में वित्तीय पर्यवेक्षी बोर्ड का गठन किया गया जिसमें विभिन्न प्रकार की विशेषज्ञता प्राप्त पेशेवर विशेषज्ञ रिज़र्व बैंक के केन्द्रीय बोर्ड से कुछ चुनिंदा सदस्य लिए गये हैं, जो 'पर्यवेक्षण पर निर्विघ्न रूप से ध्यान' दे सकें और वाणिज्य बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के पर्यवेक्षण के प्रति समन्वित दृष्टिकोण सुनिश्चित कर सकें। रिज़र्व बैंक ने 1995 में बैंकों की अप्रत्यक्ष निगरानी और पर्यवेक्षण की एक प्रणाली भी गठित की जो अतिसंवेदनशील संस्थाओं के प्रत्यक्ष निरीक्षणों के लिए संकेतकों के रूप में एक जल्दी चेतावनी प्रणाली का प्रावधान करती है। तब से लेकर अप्रत्यक्ष पर्यवेक्षण की व्याप्ति और सीमा को बढ़ा दिया गया है ताकि इसमें बैंकों की दक्षता और जोखिम प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं को भी शामिल किया जा सके।

जैसे-जैसे हम सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते जायेंगे तो मुख्य ध्यान का केन्द्र बिन्दु यह सुनिश्चित करना होगा कि वास्तविक और राजकोषीय क्षेत्रों में सुधार की प्रगति के अनुरूप अपविनियमन और उदारीकरण की प्रक्रिया भी और आगे बढ़े। व्यवहार में, वैधानिक ढांचे के अन्तर्गत प्राथमिकताओं को यथोचित रूप से निर्धारित करना होता है ताकि विकसित होती हुई घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के अनुरूप बैंकिंग क्षेत्र में अपेक्षित सुधारों को लागू करना सुनिश्चित किया जा सके।

सारांश

अंत में, भारत में अनेकताएं हैं तो भी भारतीय समाज और नीति में साथ-साथ चलने को अदभुत वरीयता दी गयी है। यह विशेषकर हमारी राजनैतिक प्रणाली की स्थिरता में देखने को मिलती है जिसने व्यापक आर्थिक स्थिरता तथा सतत वृद्धि को बढ़ाने में योगदान किया है। यदि हम दृष्टिकोण के बारे में कहें तो उसने भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि की संभावनाओं को काफी सुदृढ़ किया है तथा यह वर्तमान गति को बनाये रखने के लिए पर्याप्त समर्थ दिखाई देता है। इस अवसर पर सबसे महत्त्वपूर्ण नीति संबंधी चुनौती है - मुद्रास्फीतिगत दबावों को नियंत्रित रखते हुए उच्च वृद्धि पथ पर रूपान्तरण को प्रबंधित करना। रिज़र्व बैंक का नीतिगत प्रयास यह होगा कि स्वतः तेज होती हुई वृद्धि दर को बनाये रखने की दृष्टि से 2007-08 में मुद्रास्फीति को 5.0 के आसपास और मध्यावधि में 4.0-4.5 प्रतिशत के दायरे में बनाये रखे। व्यापक आर्थिक तथा वित्तीय स्थितियों का सम्भावित विकास एक ऐसे परिवेश का संकेत कर रहा है जो भारत में मूल्य स्थिरता पर यथोचित बल देते हुए और मुद्रास्फीतिगत अपेक्षाओं को नियंत्रित रखते हुए वर्तमान वृद्धि की गति को बनाये रखने में सहायक होगा।